RNI : 66866/97

विश्व दीप दिव्य सन्देश

(मासिक शोध पत्रिका)

संरक्षक : सार्वभौम जगतगुरु, महामण्डलेश्वर परमहंस योगीराज श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी

वर्ष-23 विक्रम संवत् – 2076 (अक्टूबर-2019) अंक-5

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर

RNI : 66866897

विश्व दीप दिव्य संदेश

(मासिक पत्रिका)

वर्ष – 23 | विक्रम संवत् – २०७६ | अङ्क–5 | अक्टूबर, 2019

* प्रमुख संरक्षक *

परम महासिद्ध अवतार श्री अलखपुरी जी

परम योगेश्वर स्वामी श्री देवपुरी जी

* प्रेरणास्रोत *

भगवान् श्री दीपनारायण महाप्रभुजी

* संस्थापक *

परमहंस स्वामी श्री माधवानन्द जी

* संरक्षक *

सार्वभौम जगद्गुरु महामण्डलेश्वर परमहंस विश्वगुरु स्वामी श्री महेश्वरानन्द जी

* परामर्शदाता *

पण्डित अनन्त शर्मा

डॉ. नारायणशास्त्री काङ्कर

* प्रधान संपादक *

महामण्डलेश्वर स्वामी ज्ञानेश्वर पुरी

* संपादक *

सोहन लाल गर्ग

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

* सह–संपादक *

डॉ. रामदेव साहू

डॉ. रघुवीर प्रसाद शर्मा

तिबोर कोकेनी

श्रीमती अन्या वुकादिन

* सहयोग *

डॉ. योगेश कुमार, नवीन जोशी

प्रकाशक

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान

(जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोडाला, जयपुर

website : vgda.in, Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Email : jaipur@yogaindailylife.org

अनुक्रमणिका

	सम्पादकीय		3
1.	'अभिनय वेद पाठमाला' में वेदों की जीवन दृष्टि	प्रो. दयानन्द भार्गव	5
2.	रसिककवि लोलिम्बराज का साहित्य वैभव	गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'	13
3.	वैदिक ज्योतिष शास्त्र में सूर्य : एक परिचय	डॉ. रामदेव साहू	18
4.	अथ संस्कृत भाषा प्रस्ताव:	डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा	22
5.	ज्योतिषशास्त्रस्य प्रभेद:	डॉ. सीमा शर्मा	24
6.	प्रो. सुरजनदासजी स्वामी	पं. नवीन जोशी	29

टाईप सेटिंग एवं मुद्रण : **आइडियल कम्प्यूटर सेन्टर**,3580 मोतीसिंह भोमियों का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर ❊ मो. 9829028926

सम्पादकीय

विश्व गुरुदीप आश्रम शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित मासिक शोध पत्रिका का चतुर्थ पुष्प आपके कर कमलों में देते हुए अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस मासिक पत्रिका के तीन अंक पूर्व में प्रकाशित हो चुके हैं। भारतीय धर्म संस्कृति के शोध लेखों का यह संग्रह विद्वानों द्वारा सराहा जा रहा है। नियमित विद्वानों द्वारा भेजे जा रहे शोध लेख हमारा मनोबल बढा रहे हैं व पत्रिका के महत्त्व को भी आलोकित कर रहे हैं। पूर्व अंकों में सभी उच्चस्तरीय विद्वानों के लेख प्रकाशित हुए हैं व शोध संस्थान द्वारा किये गये कार्यक्रमों के चित्र सहित विवरण प्रकाशित किया गया है।

प्रकाशन की इसी परम्परा में कुछ नये आयामों को और जोड दिया गया है, जिसमें संस्था, विद्यावाचस्पती समीक्षाचक्रवर्ति पं. मधुसूदन ओझा के अप्रकाशित साहित्य को सानुवाद प्रकाशित करने का कार्य भी कर रहा है।

प्रत्येक रविवार को अन्तर्राष्ट्रिय वैदिक संस्कृति व्याख्यानमाला की शुरुआत पिछले एक वर्ष से हो रही है। विश्वस्तरीय विद्वानों द्वारा अति महत्वपूर्ण व्याख्यानों का प्रकाशन व प्रसारण भी किया जा रहा है। विभिन्न संगोष्ठी सेमीनार व जन्ममहोत्सवों के आयोजन अवसर पर किये गये संस्था द्वारा कार्य प्रकाशन, प्रसारण की सम्पूर्ण सूचनार्थ प्रत्येक माह इस पत्रिका के माध्यम से सुधीजनों तक पहुँचाने का यथासम्भव कार्य हमारे द्वारा किया जा रहा है।

इस अंक में प्रकाशित समस्त लेख प्राच्यनक विद्वानों का एक संगम है। आशा है सुधीजन इस ज्ञान गंगा का पान पूर्ण मनोयोग के साथ करेंगे।

आप सभी को शुभकामना व आगामी लेखों के लिए आग्रह के साथ।

–सम्पादक

मासिक रिपोर्ट

(विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर)

(अक्टूबर–2019)

कार्यक्रम	शिविर	कार्यशाला	प्रकाशन	व्याख्यान–प्रस्तोता–दिनांक–विषय
			भुवनकोश लेखक पं.मधुसूदन ओझा, संपादक– डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा **चिन्तारत्नम्** लेखक : डॉ. सीमा शर्मा	**प्रो. अनन्त शर्मा –** अन्तर्राष्ट्रिय संगोष्ठी–वाल्मीकी जन्ममहोत्सव, 13.10.2019 वाल्मीकि रामायण एवं भगवान श्रीराम **प्रो. अनन्त शर्मा –** व्याख्यानमाला–20.10.2019 वैदिक शब्दों के अर्थ एवं प्रयोग।

'अभिनव वेद पाठमाला' में वेदों की जीवन दृष्टि

प्रो. दयानन्द भार्गव

'अभिनव वेद पाठमाला' में मल्लिनाथ की टीका का 'नामूलं लिख्यते किञ्चित्' वाक्यांश शीर्षक बनाया है। इसका यह अभिप्राय है कि हम पाठकों को वेद का अभिप्राय वेद के ही शब्दों में देना चाहते हैं। वेद के भाष्यों में भाष्यकारों का परस्पर पर्याप्त मतभेद है। उस मतभेद में जाने से पहले यह उचित होगा कि हम वेद का मूल आशय वेद के ही शब्दों में समझ लें। अतः इसमें वेदों के ३५ ऐसे मन्त्र दिये हैं, जिनकी व्याख्या में मतभेद की गुंजाईश न के बराबर है। इन मन्त्रों पर दृष्टिपात करें, तो कुछ कुछ बात स्पष्ट हो जाती है।

प्रथम तो यह स्पष्ट है कि वेद का जीवन के प्रति पूर्णतः आशावादी तथा सकारात्मक दृष्टिकोण है। वेद में जितनी चिन्ता अध्यात्म की है, उतनी ही चिन्ता लौकिकता की भी है। परवर्ती दर्शनों में संसार की निस्सारता पर बहुत अधिक बल दिया गया है। परिणाम स्वरूप लौकिक सुखों की न केवल उपेक्षा की गयी है, प्रत्युत निन्दा भी की गयी है। वैदिक दर्शन जिसे कामना कहते हैं, बौद्ध तृष्णा कहते हैं और जैन मोह कहते हैं, उसे त्यागने की बात कही जाती है। वित्तैषणा, पुत्रैषणा तथा लोकैषणा के छोड़ने की बात दर्शनों में ही नहीं, उपनिषदों तक में बारम्बार कही गयी है। किन्तु वेद में बारम्बार सम्पदा, स्वास्थ्य, यश और सम्पत्ति की प्रार्थना की गयी है–अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे यशसं वीरवत्तमम् (ऋग्वेद १.१.३) तथा दीर्घ जीवन की कामना की गयी है–जीवेम शरदः शतं पश्येम शरदः शतम् (अथर्ववेद १९.६७.१-२) स्पष्ट है कि वेद में सांसारिक सुखों के प्रति वितृष्णा का भाव नहीं है और न संसार से पलायन का भाव है।

वेद के इस दृष्टिकोण का यह परिणाम हुआ कि वेद के ज्ञान को अपरा विद्या कह दिया गया जबकि परा विद्या उपनिषदों का विषय मानी गयी। अक्षर तत्व पराविद्या के द्वारा जाना जाता है और उसी से अमृत तत्त्व की प्राप्ति होती है–(मुण्डकोपनिषद् १.४.४-५)। इसी आधार पर यूरोप के विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वेदों में आदिम जाति के विचार हैं, जिनका धर्म अथवा अध्यात्म की दृष्टि से बहुत महत्त्व नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारा ध्यान एक ओर तो श्री अरविन्द ने आकृष्ट किया, जिन्होंने अनेक वैदिक मन्त्रों का गम्भीर अध्यात्मपरक अर्थ किया, दूसरी ओर पण्डित मधुसूदन ओझा एवं उनकी शिष्य परम्परा ने विज्ञान नाम से मुख्यतः ब्राह्मण ग्रन्थों का सहारा लेकर एक गम्भीर समग्र जीवन दृष्टि

प्रदान की। इसके बावजूद पठन पाठन में अभी सायणाचार्य के भाष्य को ही महत्त्व दिया जा रहा है। स्वामी दयानन्द ने वेद का जो समाज परक अर्थ किया, वह भी परम्परावादी स्वीकार नहीं कर रहे। ऐसी स्थिति में हमनें प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में वेदों से सात ऐसे सूक्तों का चयन किया है, जिनके अध्ययन से वेदों की गम्भीरता और गरिमा तो प्रकट होती ही है, साथ ही इन सात सूक्तों की यह विशेषता भी है कि इनका किसी भी पद्धति के भाष्य को आधार क्यों न बनाया जाये, तथापि इतना स्पष्ट हो जाता है कि वेदों में आदिम जाति के विचारों की अभिव्यक्ति नहीं है, अपितु एक गहरा चिन्तन है। इस दृष्टि से हमनें इन सातों सूक्तों का सायणभाष्य भी दे दिया है और साथ ही स्वयं पण्डित मधुसूदन ओझा की वेदविज्ञान पद्धति के अनुसार स्वोपज्ञ भाष्य भी दिया है।

इन सात सूक्तों के भाष्य को पढ़ने के बाद पाठकों का यह मत तो निर्विवाद रूप से बन ही जायेगा कि वेदों में एक गूढ़ गम्भीर सन्देश है। इस पृष्ठभूमि के साथ यदि वे वेद का परायण करेंगे तो उन्हें यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वेद वस्तुतः एक समग्र जीवन दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं। इसका एक संक्षिप्त परिचय पाठकों को इस अभिनव वेदपाठ माला के अनेक भूमिका-भागों तथा परिशिष्टों में प्राप्त हो जायेगा। ऊपर सामान्य भूमिका में दिये गये उद्धरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि वेदों में बहुदेववाद की पृष्ठभूमि में अद्वैत अथवा एकेश्वरवाद ही है। वेदों के देव नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरणः वरुण ऋत का रक्षक है और व्रतों को धारण करता है-(ऋग्वेद ८.२५.८,१.२५.८)। ऋषि को यह ध्यान है कि उसे नैतिक मूल्यों का पालन करना है-(ऋग्वेद १.२५.१, ७.८९.५)। उसे यह खेद है कि उसने वरुण की मैत्री खो दी-(ऋग्वेद ७.८८.५)। वह कहता है कि वह जल के बीच भी प्यासा है-अपां मध्ये तस्थिवासं तृष्णाविदज्जरितारम्।(ऋग्वेद ७.८९.४)। यह वक्तव्य कबीर का स्मरण कराता है, जिन्होंने कहा था -जलबिच मीन प्यासी। अभिप्राय यह है कि वेद में जहाँ एक ओर सामाजिक और नैतिक मूल्यों का संकेत है जिसका उपबृंहण स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया तो दूसरी ओर अध्यात्म का भी संकेत है, जिसका उपबृंहण महर्षि श्री अरविन्द ने किया। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में इन दोनों ही प्रकार की धाराओं का समन्वय है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का भाष्य तथा महर्षि श्री अरविन्द का भाष्य पृथक् रूप से हिन्दी, अँग्रेजी तथा संस्कृत में भी उपलब्ध है। किन्तु पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा का भाष्य यत्र तत्र बिखरा हुआ है। प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में उसे ही एकत्र करके संक्षिप्त रूप में सम्पादित किया गया है। इसके अतिरिक्त इस परम्परा का भाष्य हिन्दी अथवा अँग्रेजी में नही है, संस्कृत में है। इस अभाव की पूर्ति भी प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

जहाँ तक वैदिक देवों का सम्बन्ध है उनके अनेक नैतिक गुण वेदों में बताये गये हैं, जिसके

आधार पर स्वामी दयानन्द वेदों की व्याख्या एक आचार संहिता के रूप में कर पाये। उनके इस प्रयत्न का आधार ब्राह्मण ग्रन्थों का यह वाक्य है कि जो देवताओं ने किया वही मैं भी करूँ– यद्देवा अकुरवँस्तद् करवाणि। यह परम्परा सर्वमान्य है–देवो भूत्वा देवं यजेत्। अथर्ववेद के भूमिसूक्त की प्रथम पंक्ति वैदिक आचार संहिता का सारांश प्रस्तुत कर देती है–सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षां तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति(अथर्ववेद १२.१.१)। इस पंक्ति में पृथिवी को धारण करने की बात कही गयी है, यही वक्तव्य इस बात का आधार बना कि धर्म धारण करता है–धारणाद् धर्ममित्याहुः।

यद्यपि पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में ऋत और सत्य का एक पारिभाषिक अर्थ लिया गया है तथापि एक अन्य दृष्टि से भाषावैज्ञानिकों ने ऋत का लातिनी भाषा के rectus शब्द से सम्बन्ध माना है, जिससे अँग्रेजी का right शब्द आया। अर्थात् ऋत सम्पूर्ण नैतिकता का सूचक है और उसके विरुद्ध अनृत अव्यवस्था का सूचक है। ऋत सम्पूर्ण अस्तित्व से सामरस्य बनाये रखने का सूचक है। यज्ञ के लिए ऋत, सत्य, श्रद्धा और तप आवश्यक है(ऋग्वेद ९.११३.२)। ऋत के द्वारा ही मनुष्य दुःखों से पार जा सकता है(ऋग्वेद ९.१३३.६)।

ऋत के अतिरिक्त वेद में सत्य को महत्त्व दिया गया है।(ऋग्वेद १.१.५; ११३.४) ऋत और सत्य तप से प्रकट होते हैं(ऋग्वेद १०.१९०.१)। सत्य का सत् से सम्बन्ध है। इस अर्थ में ३३ देवता सत्य की ही अभिव्यक्ति हैं–युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्ताद।(ऋग्वेद ८.५७.२) उल्लेखनीय है कि वेद में अहिंसा की अपेक्षा भी सत्य को अधिक महत्त्व दिया गया है।

सत्य के साथ साथ वेद में तप की बहुत महिमा है। तप का सृष्टि के सर्जन में महत्त्वपूर्ण स्थान है–तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिनाजायतैकम्। (ऋग्वेद १०.१२९.१२) वेद में तप का अर्थ प्राणशक्ति का प्रयोग है, न कि शरीर का सुखाना। प्राणशक्ति के द्वारा परिस्थिति का सामना करना तप है। तप से जुड़ा हुआ ब्रह्मचर्य है, जिसका अर्थ केवल मैथुन का त्याग ही नहीं है अपितु वेद का स्वाध्याय भी है। देवों ने ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा मृत्यु को जीता–ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नन्(अथर्ववेद ११.५.१९)। ब्रह्मचारी तप के द्वारा आचार्य को तृप्त करता है–आचार्यं तपसा पिपर्ति(अथर्ववेद ११.५.११)। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही कन्या युवा पति को प्राप्त करती है–ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्(अथर्ववेद ११.१५.१८)। ब्रह्मचर्य गृहस्थ आश्रम में प्रवेश की तैयारी भी है, यद्यपि अपवाद रूप में कुछ ब्रह्मचारी आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन भी करते थे।

वैदिक दृष्टि से गृहस्थ का जीवन सबसे अधिक गौरवपूर्ण है।(अथर्ववेद ७.६०.६) वेदों में गृहस्थ की सम्पन्नता के लिए प्रार्थना की गयी है। (अथर्ववेद १४.२.२८) गृहस्थ के लिए संतति की कामना मुख्य है।(अथर्ववेद १४.२.१७-१८) वेद में स्त्री का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है, वह सम्भवतः बाद में नहीं

रहा।(अथर्ववेद १४.१.४३-४४) इस प्रकार वैदिक दृष्टि में गृहस्थ का स्थान केन्द्र में है, सन्यास का वैसा महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार यद्यपि वेद में सन्यास के संकेत तो हैं तथापि मुख्य आश्रम ब्रह्मचर्य और गृहस्थ ही है। ऋग्वेद में ऐसे परिब्राजक का भी उल्लेख है जो एक वन से दूसरे वन में घूमता है, निर्भय है और दुनियादारी की बातों से दूर रहता है-अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि। कथा ग्रामं न पृ%छसि न त्वा भीरिव विन्दती(ऋग्वेद १०.१४६.१)। वह फलों पर निर्भर रहता है और पशु उसे हानि नहीं पहुँचाते। (ऋग्वेद १०.१४६.५) ऋग्वेद में एक ऐसे सन्यासी का उल्लेख भी है जो आत्मशक्ति, श्रद्धा, तपस्या, प्रकाश और आनन्द की कामना करता है-आत्मनि करिष्यन्वीर्यम्(ऋग्वेद ९.११३.१), ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत(ऋग्वेद ९.११३.२), यत्र ज्योतिरजस्रम्(ऋग्वेद ९.११३.७), यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्रासाः कामाः(ऋग्वेद ९.११३.११)।

चार आश्रमों के अतिरिक्त वेद में चार वर्णों की व्यवस्था भी है। यहाँ वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि चारों वर्ण समाज के चार अंगो के समान है अर्थात् उन्हें परस्पर सामञ्जस्य रखते हुए कार्य करना चाहिए।(ऋग्वेद १०.९०.१२) उल्लेखनीय है कि वेद में चारों ही वर्णों के लिए समान रूप से तेज की प्रार्थना की गयी है-

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि

रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् (यजुर्वेद १८.४८)

बाद में निहित स्वार्थों के कारण वर्ण व्यवस्था ऊँच-नीच का भेदभाव का कारण बन गयी और इसके विरुद्ध जैन-बौद्धों से लेकर मध्यकालीन संतो ने विरोध किया और परिणाम स्वरूप सिक्ख धर्म जैसे अनेक मत वैदिक परम्परा से पृथक् हो गये। आवश्यकता इस बात की है कि वेद की उदार दृष्टि से ऐसी व्याख्या की जाये कि वर्णव्यवस्था को लेकर वेदों का विरोध न हो। यदि वर्ण व्यवस्था की संकीर्ण व्याख्या की जायेगी तो वह स्वीकार्य न होगी और परिणाम स्वरूप एक बड़ा वर्ग वेद के उदात्त संदेश से वंचित रह जायेगा। वस्तुतः वेद की मूल भावना मनुष्य और मनुष्य में भेद करने की नहीं है किन्तु कुछ ऐतिहासिक कारणों से वेदों की ऐसी छवि बन गयी कि उसके विरोध में स्वर उठते रहे। इस स्थिति को राष्ट्रिय हित में नहीं माना जा सकता। वस्तुतः वेद मानवमात्र की सम्पदा है और उसे इसी रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

वेद के केन्द्र में यज्ञ है। इसी कारण सायणाचार्य ने सभी वेद मन्त्रों की यज्ञ परक व्याख्या की है। सायणाचार्य ने यज्ञ की जो व्याख्या की उसमें यज्ञ का अर्थ श्रौत यज्ञ है। जिनका विस्तार ब्राह्मण

ग्रन्थों में है। ये श्रौत यज्ञ अत्यन्त जटिल है और वर्तमान में उनका प्रचलन भी अत्यन्त विरल है। यह कहना भी कठिन है कि नासदीय सूक्त जैसे सूक्तों का प्रयोजन वैदिक कर्मकाण्ड रहा होगा। श्रीमद्भगवद्गीता जैसे ग्रन्थ में यज्ञ का एक व्यापक अर्थ लिया गया है जिसके अनुसार सम्पूर्ण जीवन ही यज्ञ बन जाता है। यज्ञ की ऐसी व्याख्या ही वर्तमान युग में उपादेय है। वस्तुतः श्रौत यज्ञों को लेकर केवल जैन और बौद्ध ही नहीं उपनिषद् भी प्रश्न उठाते रहे हैं–प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः (मुण्डकोपनिषद् १.२.७)। ऐसी स्थिति में गीता का यह वक्तव्य उपादेय है कि हमारे सभी कर्म यज्ञ हैं–यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः (गीता ३.९)। अभिप्राय यह है कि हमारे सभी कर्म कर्तृत्व के अहंकार तथा फल की आसक्ति से मुक्त होने चाहिए, यही यज्ञ का अभिप्राय है।

ब्राह्मण ग्रन्थों की जीवन दृष्टि

सायणाचार्य ने वेद की जो कर्मकाण्ड परक व्याख्या की उसका आधार ब्राह्मण ग्रन्थ है इसलिए परम्परा ने सायण की व्याख्या को स्वीकार किया। परम्परा ने यह भी माना कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद ही हैं–मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् (यद्यपि स्वामी दयानन्द मन्त्र भाग को ही वेद तथा स्वतः प्रमाण मानते हैं।) इसका यह अर्थ हुआ कि ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर की गयी वेद की व्याख्या ही प्रमाणिक है और क्योंकि सायणाचार्य की व्याख्या का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ है इसलिए उनकी व्याख्या ही प्रमाणिक है। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा ने भी इसी मत को स्वीकार किया। किन्तु उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों के अर्थवाद भाग को लेकर एक ऐसा ढाँचा खड़ा किया जिसे उन्होंने विज्ञान नाम दिया और जिसका श्रेय उन्हें दिया जाना चाहिए। विज्ञान शब्द का प्रयोग परम्परा में यज्ञ विद्या के लिए किया जाता है–विज्ञानं यज्ञं तनुते। ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर जो वेदविज्ञान का ढाँचा पण्डित मधुसूदन ओझा ने खड़ा किया वह वर्तमान युग के लिए उपयोगी भी है और परम्परासम्मत भी है। इसलिए उसका अपना महत्त्व है। पण्डित मधुसूदन ओझा की परम्परा में प्रश्न यह आया कि उस परम्परा में ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और गीता का भाष्य तो किया गया किन्तु मन्त्र भाग का भाष्य उपलब्ध नहीं हुआ; मन्त्र भाग के कुछ ही सूक्तों पर वेदविज्ञान की परम्परा के विद्वानों ने अपनी लेखनी चलायी है। उसी भाग को लेकर प्रस्तुत संकलन में सात सूक्तों का भाष्य किया गया है और उसके साथ ही सायणाचार्य का भाष्य भी दे दिया गया है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ब्राह्मण ग्रन्थ की परम्पराका अनुसरण करते हुए भी सायणाचार्य के भाष्य में कुछ नवीन जोड़ा जा सकता है।

यदि हम ब्राह्मण ग्रन्थों पर दृष्टिपात करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रतीकों की भाषा में बोलते हैं। उदाहरणतः जब यह कहा गया कि देवता दिन का आश्रय लेते हैं और असुर रात्रि का आश्रय

लेते हैं, तो यहाँ दिन प्रकाश के माध्यम से ज्ञान का सूचक हो जाता है और रात्रि अन्धकार के माध्यम से अज्ञान की सूचक हो जाती है–अहर्वै देवा अश्रयन्त रात्रीमसुराः (ऐतरेयब्राह्मण ४.५)। यह भी कहा गया है कि जो व्रत का पालन नहीं करते देवता उनकी हवि ग्रहण नहीं करते–न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति(एतरेय ब्राह्मण ७.११)। इसी प्रकार जब ब्राह्मण ग्रन्थ विभिन्न देवों को अग्नि का ही रूप बता रहे हैं तो वे अनेकता में एकता की खोज कर रहे हैं(ऐतरेयब्राह्मण ३.४)। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थों में सभी देवताओं को एक दूसरे के साथ जोड़ा गया है, जो वेद के इस दृष्टिकोण का सूचक है कि सभी देवता एक ही शक्ति के अनेक रूप हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें यज्ञविद्या का विस्तार किया गया है। वस्तुतः यज्ञ केवल कर्मकाण्ड का ही अंग नहीं है, वे ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया के भी सूचक हैं–यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि युनक्ति(शतपथ ब्राह्मण ९.४.१.११)। यज्ञ ऋत की योनि है–यज्ञे वा ऋतस्य योनिः (शतपथ ब्राह्मण १.३.४.१६)। यज्ञ का आधार ऋषि, देव और पितरों के प्रति ऋण हैं।(शतपथ ब्राह्मण १.७.२.१) यज्ञ देवों को प्रसन्न करने का ही आधार नहीं है, अपितु सामाजिक स्थिरता भी सुनिश्चित करते हैं। यज्ञ का आधार आदान-प्रदान है, जिसके कारण मनुष्य स्वार्थी होने से बच पाता है। शतपथ ब्राह्मण में सर्वमेध यज्ञ का उल्लेख है, जिसमें स्वयं की सबके लिए आहुति दे दी जाती है। (शतपथ ब्राह्मण १३.७.१.१) ज्ञान के बिना यज्ञ संसार में आवागमन का ही कारण बनता है ।(शतपथ ब्राह्मण १०.४.३.१०) यज्ञ की इसी प्रक्रिया का विस्तार उपनिषद् और गीता में हुआ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में व्रतों का विस्तार से वर्णन है। व्रत का अर्थ है कि मनुष्य दिव्यता को प्राप्त करे–तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति(शतपथ ब्राह्मण १.१.१.४, १.९.३.२३) दिव्य गुणों में सत्य मुख्य है।(शतपथ ब्राह्मण १.१.१.४, १२.८.२.४) सत्य धर्म है।(शतपथ ब्राह्मण ४.२.१.२६) सत्य का पालन तेज बढ़ाता है।(शतपथ ब्राह्मण २.२.२.१९) वस्तुतः सत्य ब्रह्म है। (शतपथ ब्राह्मण १४.८.५.१)

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्मचर्य की बहुत प्रशंसा है। ब्रह्मचारी भिक्षा पर निर्भर रहता है।(शतपथ ब्राह्मण ११.३.३.७) ब्राह्मण ग्रन्थों में दान को बहुत महत्त्व दिया है।(शतपथ ब्राह्मण ११.५.७.१) ब्राह्मण सबका मित्र है, जो किसी की हिंसा नहीं करता–सर्वस्य वायं ब्राह्मणो मित्रं न वायं कञ्चन हिनस्ति (शतपथ ब्राह्मण २.३.२.१२) अहंकार से भरी वाणी आसुरी कही गयी है। (ऐतरेय ब्राह्मण २.७) देवता सदा आनन्द में रहते हैं। (शतपथ ब्राह्मण १०.३.५.१३) पुरा काल में मनुष्य भी देवता थे–मर्त्या ह वै देवा आसुः(शतपथ ब्राह्मण ११.१.२.१३)

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में जिस नैतिकता का विस्तार है, उसको आधार बनाकर उपनिषदों का

दर्शन विकसित हुआ। वस्तुतः ब्राह्मण ग्रन्थ वेदों की सरल उपासना तथा उपनिषदों के विकसित दर्शन के बीच सेतु का काम करते हैं। उनका कर्मकाण्ड भी नैतिकता का ही प्रतीक है। दर्शपौर्णमासेष्टि यज्ञ की व्याख्या में ब्राह्मण ग्रन्थों के दर्शन को देखा जा सकता है। ऐसी व्याख्या पण्डित मोतीलाल शास्त्री ने अपने शतपथ ब्राह्मण के विज्ञानभाष्य में की है।

उपनिषदों की जीवन दृष्टि

वैदिक परम्परा में गम्भीर दर्शन का प्रारम्भ उपनिषदों से होता है। इस दर्शन का बीजारोपण वेद के ही नासदीय, पुरुष और वाक् जैसे सूक्तों में हो गया था जिनकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत अभिनव वेदपाठ माला में की गयी है। उपनिषदों में आत्मसाक्षात्कार पर बल दिया गया और यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मसाक्षात्कार के बिना दुःख से मुक्ति नहीं हो सकती। उपनिषदों के ऋषियों ने सत्य का साक्षात्कार किया था इसलिए उपनिषदों को स्वतः प्रमाण माना गया है। वस्तुतः दर्शन के क्षेत्र में श्रुति नाम से संहिताओं की अपेक्षा उपनिषदों का ही उल्लेख होता है।

उपनिषदों में ऐसा संकेत भी है कि संहिताओं को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाने लगा था । छान्दोग्योपनिषद् में नारद कहते हैं कि उन्होंने वेद और वेदांग पढ़े हैं किन्तु आत्मा का साक्षात्कार नहीं किया। (छान्दोग्योपनिषद् ७.१.२-३) मुण्डकोपनिषद् में वेदों को अपरा विद्या कहा गया है, जबकि अक्षर तत्त्व का ज्ञान परा विद्या से होता है। (मुण्डकोपनिषद् १.१५) यज्ञों को अदृढ नौका बताया गया है। कठोपनिषद् में यज्ञ विद्या का उपदेश देने के बाद भी यह कहा गया है कि स्वर्ग के सुख अनित्य हैं। (कठोपनिषद् १.१.२६) पुण्य क्षीण होने पर जीव संसार में पुनः लौट आता है। (मुण्डकोपनिषद् १.२.९-१०) मोक्ष में केवल दुःख का अभाव नहीं है, अपितु आनन्द भी है। इस प्रकार उपनिषदों में देवोपासना से आत्मसाक्षात्कार, स्वर्ग से मोक्ष और अभ्युदय से निश्रेयस की ओर झुकाव दृष्टिगोचर होता है। धन, संतति और यश की इच्छा को मोक्ष में बाधक माना गया है।

उपनिषदों की आचार मीमांसा की एक विशेषता यह है कि उसमें पाप-पुण्य से ऊपर उठने की बात कही गयी है। (कठोपनिषद् १.२.१२) सामान्य नैतिकता से ऊपर उठने का यह अर्थ नहीं है कि हम अनैतिक हो जायें। छान्दोग्योपनिषद् में तप, दान, ऋजुता, अहिंसा और सत्य की प्रशंसा है-अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति(छान्दोग्योपनिषद् ३.१७.४) अहिंसा के साथ दया का भी उपदेश दिया गया है। (बृहदारण्यकोपनिषद् ५.२.३) सत्य का महत्त्व उपनिषद काल में भी बना रहा। (बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१४) मुण्डकोपनिषद् का कहना है कि सत्य की ही जय होती है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१६.९) सत्य और तप के द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार हो सकता है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१.५)

वेदों से लेकर उपनिषदों तक ब्रह्मचर्य की प्रशंसा निरन्तर होती रही है। (प्रश्नोपनिषद् १.१६) ब्रह्मचारी को दम और शम का पालन करना चाहिए। (तैत्तिरीयोपनिषद् १.४.२) परवर्ती उपनिषदों में अपरिग्रह की भी चर्चा है। (तेजोबिन्दु ३, जाबालोपनिषद् ५) इसी प्रकार दान की प्रशंसा भी है –त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञोध्ययनं दानमिति(छान्दोग्योपनिषद् २.२३.१) संयम की प्रशंसा बारम्बार है। (कठोपनिषद् १.३.४-१०)अन्तर्मुखता को बहुत महत्त्व दिया गया है। (कठोपनिषद् २.१.१) आत्मसाक्षात्कार ध्यान से ही सम्भव है। (मुण्डकोपनिषद् ३.१.८) श्वेताश्वतरोपनिषद् (१.१४) में ध्यान की प्रक्रिया विस्तार से दी गयी है। श्रद्धा(छान्दोग्योपनिषद् ७.१९), ज्ञान (तैत्तिरीयोपनिषद् २.१.१), निष्काम भाव (बृहदारण्यकोपनिषद् ४.३.२१) तथा तप (तैत्तिरीयोपनिषद् ३.२.१) आदि नैतिक गुणों का बारम्बार उल्लेख है। त्याग इन सब गुणों में मुख्य है। (ईशोपनिषद् १)

उपनिषदों में श्रेय और प्रेय के बीच विरोध दिखाया गया है। (कठोपनिषद् १.२.१) इस कारण ऐन्द्रिक सुखों की निन्दा भी की गयी है। (कठोपनिषद् १.२.२) इस प्रवृत्ति के कारण भारतीय चिन्तन में लौकिकता की उपेक्षा हो गयी और सन्यास की मुख्यता हो गयी। शनैः शनैः सामाजिक गुणों की उपेक्षा हो गयी तथा त्याग और तपस्या प्रतिष्ठित हो गयी। धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग की उपेक्षा हो गयी और मोक्ष मुख्य हो गया। किन्तु मोक्ष के साथ नैतिकता सदा जुड़ी रही।

अभिनव वेदपाठ माला की भूमिका में संहिता और ब्राह्मण के साथ उपनिषदों का भी विवरण देने का कारण यह है कि भारतीय परम्परा उपनिषदों को भी श्रुति मानती है। सायण जैसे भाष्यकार वेदों की व्याख्या करते समय उपनिषदों का उल्लेख करते हैं। वस्तुतः भारतीय परम्परा में वेद के तीन काण्ड माने जाते हैं–कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञानकाण्ड। इन तीन काण्डों का क्रमशः वेद, आरण्यक और उपनिषदों में विस्तार है। आत्मसाक्षात्कार में तीन बाधक हैं–मल, विक्षेप और आवरण। इन तीनों बाधाओं का निवारण क्रमशः कर्म, उपासना और ज्ञान से होता है। इसी दृष्टि का विस्तार गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग के द्वारा किया गया है। भारतीय चिन्तन का आधार यही समग्र दृष्टि है। पश्चिम के विद्वान् भले ही इससे सहमत न हों, किन्तु भारतीय परम्परा इस सम्बन्ध में स्पष्ट है।

पीठाचार्य, धर्मदर्शनसंस्कृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

रसिककवि लोलिम्बराज का साहित्य वैभव

गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

आयुर्वेद जगत् में वैद्य जीवन के रचयिता रसिक कवि लोलिम्बराज की बड़ी ख्याति हैं ये बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थें इनकी यह प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। आप एक आशुकवि और सिद्धहस्त चिकित्सक होने के साथ ही उच्चकोटि के संगीताचार्य भी थे। उनका तत्कालीन राजा-महाराजा और शाह-बादशाहों के यहाँ अच्छा सम्मान था।

लोलिम्बराज की जन्मभूमि 'जुन्नर' बताई जाती है, जो महाराष्ट्र के पूना जिले के अन्तर्गत है। इनके पिता का नाम दिवाकर भट्ट था, जो अत्यन्त आस्तिक और कर्मनिष्ठ महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण थे। आपको वृद्धावस्था में सूर्याराधन से लोलिम्बराज ही इकलौती सन्तान प्रापत हुई थी। इसलिये उनके लालन-पालन में आपने कोई कमी नहीं रखी, परन्तु लोलिम्बराज के बाल्यकाल में ही वे परलोकगामी हो गये। इसी से लोलिम्बराज की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं हो सका। असहाय माता पढाने-लिखाने का प्रबन्ध नहीं कर सकी। शिक्षा के अभाव में वे उदण्ड होते गये। ग्रामवासी उनकी उदण्डता के विषय में माता को आकर उल्हाना देते रहते थे। यहाँ तक कि उनके साथी उन्हें 'मूर्ख' तक कह कर चिढाने लगे थे। जब वे बड़े हुये तो उन्हें अपनी मूर्खता का अहसास हुआ और वे अपनी अज्ञता पर पश्चात्ताप करने लगे। आखिर एक दिन वे चुपचाव अकेले ही घर से निकल गये। जुन्नर से आप सीधे सप्तशृंगी देवी के मन्दिर की ओर चले गये जो नासिक जिले में स्थित है। वहाँ जाकर वे अपनी परम निष्ठा और भक्ति के साथ देवी की आराधना में संलग्न हो गये। माता भगवती उनकी भक्ति से प्रसन्न हो गई और साक्षात् प्रकट होकर वाक्सिद्धि, घी, धृति, स्मृति और श्री की प्राप्ति का वरदान देकर अन्तर्धान हो गई। नवीन आलोक से प्रकाशमान होकर लोलिम्बराज प्रसन्न होते हुये अपने गाँव जुन्नर लौट आये।

उस वर प्राप्ति के फलस्वरूप लोलिम्बराज को वाक्सिद्धि प्राप्त हो गई थी, वे जो बात कह देते वह प्रयः सत्य होती थी। धीरे-धीरे उनकी कीर्ति चारों ओर फैलने लगी और राजा-महाराजाओं के यहाँ भी उनका सम्मान होने लगा। उस समय दक्षिण में बीजापुर का सुलतान इब्राहिम आदिलशाह द्वितीय (1580 से 1626ई.) सबसे अधिक शक्तिशाली माना जाता था। उसको जब लोलिम्बराज के विषय में जानकारी मिली तो उसने शाही पालकी भेजकर उन्हें आदरपूर्वक अपने दरबार में बुलाया और प्रश्न किया कि- 'मेरी बेगम गर्भिणी है, बताओ उसके क्या होगा?' इस पर आपने निर्भय होकर उत्तर दिया कि

'यदि मेरी बात सच निकली तो आपको अपनी पुत्री मुझे ब्याहनी होगी।' बादशाह ने यह बात स्वीकार कर ली तब आपने कहा कि– 'बेगम साहिबा के पुत्र होगा।'

कुछ समय बाद लोलिम्बराज काा वचन सत्य हुआ और बादशाह ने खुश होकर अपनी पुत्री जिसका नाम 'मुरासा' था, लोलिम्बराज को अर्पण कर दी। लोलिम्बराज ने बडे गर्व के साथ उससे शादी कर ली और उसका नाम 'रत्नकला' रख लिया। बीजापुर के सुल्तान ने उन्हें प्रसन्न होकर अपनी बेटी ही नहीं दी अपितु उनकी विद्वता और काव्य कौशल से प्रभावित होकर 'कवि–पातशाह' की पदवी भी दी थी, जिसका उल्लेख उनके काव्यग्रन्थों में मिलता है। 'वैद्यावतंस' नामक कृति के प्रारम्भ में आपने स्वये के लिए 'कविकुलसुलतानो लोलिम्बराजः' और अन्त में 'लोलिम्बराजः कविपातशाह'' लिखा है।

लोलिम्बराज द्वारा लिखे गये ग्रन्थों के अन्वेषण का महत्वपूर्ण कार्य डॉ. श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी (वाराणसी) ने किया। पहले इनका लिखा हुआ केवल 'वैद्य जीवन' ही मिलता था, किन्तु त्रिपाठी जी ने विभिन्न स्थानों से इनके पाँच अन्य ग्रन्थों को भी प्राप्त कर शुद्ध कर प्रकाशित करवाया। इस प्रकार इनके लिखे हुये छह ग्रन्थ हैं, जिनमें दो मराठी भाषा में लिखे हुये हैं, शेषा चार संस्कृत भाषा में लिखे हुये हैं। इनमें प्रथम ग्रन्थ 'वैद्यावतंस' है जो 172 पद्यात्मक एक लघु निघन्टु है। निघन्टु का साधारण अर्थ कोष समझा जाता है किन्तु आयुर्वेद के निघन्टु ग्रन्थों मे औषध द्रव्य और आहार द्रव्यों के गुणधर्म वर्णित हैं। द्वितीय रचना 'चमत्कार चिन्तामणि' है, जो पाँच विलासों (खण्डों) में वर्णित है। इसमें कई चमत्कारपूर्ण औषधयोगों का वर्णन है। इनका तीसरा काव्यमय प्रयोग ग्रन्थ 'वैद्यजीवन' है, जो सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसके कई पद्य वैद्यों की जबान पर हैं। इसमें स्थित कई येाग वैद्यलोग अपनी चिकित्सा में प्रयुक्त करते हैं। 'लंवगादिवटी', 'रसोनादिवटी' आदि प्रसिद्ध योग वैद्य जीवन के ही हैं।

रसिक कवि ने अपनी प्रियतमा रत्नकला को सम्बोधित कर लिखा है। अपनी प्राणप्रिया को इस वैद्य जीवन में उसी प्रकार मोहक एवं सुललित सम्बोधनों से सम्बोधित किया है, जिस प्रकार कालिदास ने श्रुतबोध और ऋतुसंहार में अपनी प्रियतमा को किया है।

'वैद्यजीवन' के पाँचों खण्डों को कवि ने विलास नाम दिया है। स्त्रियों के शृंगार से उत्पन्न हाव–भाव की क्रियायें विलास कहलाती हैं। इन खण्डों में अपनी पत्नी के हाव–भावों को व्यक्त करते हुये और तदनुरूप रूप–यौवनपूर्ण सम्बोधनों को व्यक्त करते हुये लोलिम्बराज ने अपनी प्रियतमा के लिये औषधयोगों का वर्णन किया है। प्रायः प्रत्येक छन्द में मधुरचारिणि, नितम्बिनि, काममदालसे, कोमलकण्ठि, अरविन्दवन्द्यनयने, तन्वङ्गि, अखण्डितकारत्कालकलानिधिसमानने, हेमलशस्तनि, विलासदृष्टे, धृतकामकले, कोकिलकोमलस्वरे, ताम्बूल शालिवदने, प्रमदारूपमदापहारिणि, पीयूषमधुराधरे, कृशोदरि, चारुतिकुरे और कन्दर्पवर्द्धिनि आदि सम्बोधनों को उपयोग में लाया गया है। कवि ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कह देता है–

'जिन पुरुषों का चित्त न तो कभी स्त्रियों में लगा हो और न कभी साहित्यरूपी अमृत के समुद्र में ही लग्न हुआ हो, वे भला मेरे इस प्रयास को क्या जान पायेंगे।'

चिकित्सा के अधिकारी चिकित्सक को कैसा होना चाहिये– इसके लिये कवि कहता है–

गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः
पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु।
गतस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः
शुद्धोऽधिकारी भिषगीदृशः स्यात्।।

चिकित्सक पहले निदान विधि के अनुसार रोग का निर्णय करे, इसके बाद रोग को साध्य होने का निश्चय करे और इसके पश्चात् अपनी चिकित्सा प्रारम्भ करे–

आदौ निदानविधिना विदध्याद् व्याधिनिश्रयम्।
ततः साध्यं परीक्षेत पश्चाद् भिषगुपाचरेत्।।

स्वस्थ व्यक्ति और रोगी दोनों के लिये पथ्य (उचित खान-पान एवं रहन-सहन) का बडा महत्त्व है। यदि मनुष्य सदा पथ्य सेवन पर ध्यान देता रहे तो दोनों ही स्थितियों में औषध की आवश्यकता नहीं रहती। इसी बात को कवि देखिये काव्यात्मक शब्दों में प्रस्तुत करता है–

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषधनिषेवणैः।।

यह वैद्य जीवन पाँच विलासों में वर्णित है। प्रथम विलास (खण्ड) में ज्वर चिकित्सा का वर्णन है। दूसरे विलास में अतिसार ग्रहणी आदि का ावर्णन है। तीसरे विलास में प्रायः स्त्रीरोगों की चिकित्सा वर्णित है तो चतुर्थ विलास में शेष रोगों की चिकित्सा के सरल योगों का वर्णन है। अन्तिम पञ्चम विलास में वीर्यवर्धक कृष्ययोगों के अतिरिक्त कुछ रसौषधियों का उल्लेख किया गया है। इसके कतिपय योग दृष्टव्य हैं–

मृगमदविलसल्ललाटमध्ये!
मृगमदहारिणि!लोचनद्वयेन।
मृगनृपतिनूददरश्रि!
पित्तज्वरमहहद्यति रैणवः कषायः।।

अनेक सरस सम्बोधनों के साथ एकौषधि के प्रयोग का यह साहित्यिक वर्णन ध्यान देने योग्य है, जिसमें कहा गया है कि केवल एक पित्तपापडे का ही क्वाथ पित्तज्वर का नाश करता है।

अन्य सुलभ और सरल प्रयोग इस प्रकार व्यक्त किये गये हैं–

कुक्षिशूलाभशूलघ्नं विविधास्रतिसारजित्।
सेवेत सागुडं बिल्वं बिल्वतुल्यपयोधरे।।

अर्थात् उदशूल और आमजन्यशूल को तथा अनेक प्रकार के रक्तातिसार को नष्ट करने वाले कच्चे बेल के चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन करना चाहिये।

श्वास-कास में अदरख का रस मधु के साथ सेवन करना हितकर है–

शृङ्गवेररसो येन मधुना सह योजितः।
श्वास-कासभयं तस्य न कदाचित् कृशोदरि।।

इसी प्रकार कहा गया है कि गिलोय का स्वरस शहद के साथ सेवन करने से सभी प्रकार के प्रमेह विनष्ट होते हैं और सोंठ के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पीने से कामला (पीलिया) दूर होता है। सोंठ का चूर्ण एक दो ग्राम तथा गोमूत्र 50मिली. होना चाहिये। गोमूत्र बिना ब्याई बछिया का अधिक लाभप्रद होता है। गोमूत्र को छान कर लेना चाहिये तथा एक सप्ताह से अधिक नहीं सेवन करना चाहिये। एक-दो दिन रूक कर इसे पुनः सेवन किया जा सकता है जो व्यक्ति अत्यधिक कमजोर दुबले-पतले हैं उन्हें गोमूत्र नहीं सेवन करना चाहिये।

गिलोय के स्वरस की मात्रा 10-15 मिली. होनी चाहिये और इसमें एक-दो छोटे चम्मच भर कर शहद मिला कर सेवन करना चाहिये। गिलोय को अमृता कहा गया है। इसका क्वाथ बनाकर भी सेवन किया जा सकता है। वायु के रोगों में इसका क्वाथ गोधृत मिलाकर, पित्तरोगों में मिश्री मिलाकर तथा कफजन्यरोगों में मधु मिलाकर सेवन करना चाहिये।

वैद्यजीवन का अन्तिम श्लोक बड़ा प्रभावी है–

नारायणं भजतरे जठरेणयुक्ताः
नारायणं भजत रे पवनेनयुक्ताः।
नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ताः
नारायणात् परतरं न हि किञ्चिदस्ति।।

अर्थात् हे उदरोग से युक्त मनुष्यों! आप नारायणचूपर्ण का सेवन करो। हे वातरोग से पीडित मनुष्यो! आप नारायणतैल को उपयोग में लाओ। विधि ताप तथा रोगादि के दुःख से भयभीत हुये मनुष्यो! आप भगवान् नारायण को भजो, क्योंकि नारायण से बढकर अन्य कुछ श्रेष्ठ नहीं है।

इन तीन काव्यमय संस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त चतुर्थ संस्कृत भाषा में निबद्ध ग्रन्थ 'हरिविलासकाव्य' है। इसके प्रमि सर्ग में कृष्ण की बाल लीला, द्वितीय में रासक्रीड़ा, तृतीय में ऋतुवर्णन, चतुर्थ में अभगवत् वर्णन और अन्तिम पञ्चम में कंसवध का सरस छन्दों में वर्णन किया गया है। इनके

द्वारा रचे दो अन्य ग्रन्थ 'रत्नकलाचरित' तथा 'वैद्यकाव्य' मराठी भाषा में निबद्ध है। कहा जाता है कि जैसे भवभूति को शिखरिणी, भारवी को वंशस्थ छन्छ पसन्द है, वैसे लोलिम्बराज को मालिनी छन्द अधिक पसन्द है–

भवभूतेः शिखरिणी वंशस्थं भारवैर्यथा।
तथा विराजते चास्य मालिनी कीर्तिशलिनी।।

'कीर्तिर्यस्य स जीवति' इस उक्ति के अनुसार जब तक साहित्य अनुरागी चिकित्सक समाज इस धरा पर विद्यमान रहेगा तब तक इस रसिकराज लोलिम्बराज की यह प्रशस्ति गाता रहेगा–

सरसवचनगुम्फो दातृताकल्पवृक्षो
विजितकविकदम्बो डाकिनीभतिभेत्ता।
त्रिदशसदसि वाच्यो रोगिणां रोगहन्ता
जयति धरणिपीठे लाल लोलिम्बराजः।।

अध्यक्ष,
राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्
जयपुर

वैदिक ज्योतिष शास्त्र में सूर्य : एक परिचय

डॉ. रामदेव साहू

भारतीय ज्योतिष शास्त्र वेदाङ्ग के रूप में सुप्रतिष्ठित रहा है। यद्यपि इसका जन्म यज्ञादि की क्रियमाणता के सन्दर्भ में कालज्ञान के निमित्त हुआ था किन्तु कालान्तर में जीव एवं जगत् दोनों के सन्दर्भ में इसे अन्वेषण का विषय बनाया गया जिसके परिणामस्वरूप यह अज्ञात भूत एवं भविष्य के विज्ञापक रूप में विकसित हुआ। उपनिषत्काल से पूर्व ही इसे पृथक् शास्त्र एवं विद्या के रूप में जाना जाने लगा था। इस शास्त्र का अवलम्बन प्राप्त कर ऋषि त्रिकालदर्शी हुए। उन्होंने अपनी शिष्य परम्परा के माध्यम से इसे पल्लवित किया। अनेक युगों की दीर्घावधि में किये गये चिन्तन के परिणामस्वरूप भारतीय ज्योतिष अनेक शाखा-प्रशाखाओं के रूप में अपने व्यापक स्वरूप को व्यक्त करने लगा। वर्तमान में पञ्चस्कन्धात्मक ज्योतिषशास्त्र सुप्रसिद्ध हैं तथा उनके अतिरिक्त अन्य रूपों में भी उसका विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

ज्योतिष शब्द का मूल आधार है 'ज्योतिः' जिसका अर्थ है 'प्रकाश' चूँकि प्रकाश में ही सब कुछ दिखायी देता है तथा प्रकाश के अभाव में कुछ भी दिखायी नहीं देता। इसी से स्पष्ट होता है कि ज्योतिष वह ज्ञान है जो अदृष्ट भूत एवं भविष्य को भी स्पष्टतापूर्वक देख लेता है। 'ज्योति' अथवा प्रकाश का आदिम स्रोत भगवान् सूर्य हैं तथा वे ही इस शास्त्र के अधिष्ठाता रहे हैं। यद्यपि हमारे यहाँ सभी विद्याओं का प्रवर्तक ब्रह्मा को माना जाता रहा है तथापि वैदिक अवधारणाओं से यह भी स्पष्ट है कि ब्रह्मा एवं अन्यान्य सभी देवता सूर्य में ही प्रतिष्ठित हैं, अतः ब्रह्मा को प्रवर्तक मानने पर भी सूर्य का अधिष्ठातृत्व समाप्त नहीं हो जाता। इसी प्रकार सूर्य में जो प्रकाश है उसका मूल तत्त्व अग्नि है जो अत्यन्त व्यापक है। सभी लोकालोकों में प्राणि शरीरों में वनस्पति में तथा निर्जीव कहे जाने वाले पत्थर इत्यादि द्रव्यों में भी अग्नि की विद्यमानता है।

अग्नि की विद्यमानता जहाँ एक ओर द्रव्य के या सजीवों के अपने स्वरूप को व्यक्त करती है तथा उसका अनुभव कराती है वहीं दूसरी ओर सूर्य के प्रकाश में उसे अन्यों के लिए भी प्रदर्शित करने में सहायक होती है। सूर्य के आधारभूत तत्त्वों में प्रथम मूलतत्त्व होने से ही अग्नि को देवताओं में प्रथम स्थान दिया गया है। वैदिकों की तो स्पष्ट अवधारणा रही है– ''अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं बह्म सनातनम्[3]''। सूर्य में प्रतिष्ठित अग्नि ही जगदुत्पत्ति का भी कारण रही है क्योंकि सृष्टियज्ञ का प्रवर्तन सूर्य में ही होता है निरन्तर होता रहता है। पार्थिव परमाणुओं में विद्यमान शक्तिपुञ्जमयी रश्मियों को अपने रश्मियों से

ग्रहण कर सूर्य ही अपने में विद्यमान अग्नि को उन्हें हवि रूप में प्रदान करता है, परिणाम स्वरूप 'अग्निना अग्निः समिध्यते', अर्थात् वह अग्नि इन रश्मियों को और भी परिपक्व बना देता है। जिस प्रकार पकाया गया अन्न प्राणियों का पोषण करता है उसी प्रकार ये परिपक्व रश्मियाँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का परिपोषण करती हैं।

सूर्य के अन्तस् में जैसे अग्नि प्रतिष्ठित है वैसे ही वायु भी प्रतिष्ठित है जो अग्निमण्डलीय दबाव से उत्पन्न जलार्द्रता के कारण परमाणुओं को विच्छिन्न किये बिना प्रत्येक रश्मि को पृथक् पृथक् प्रवाहित करता है। अन्तरिक्ष में विद्यमान अव्यक्त अणुरूप वायु का ही यह कार्य है कि सूर्य की रश्मियाँ बिना परस्पर मिश्रित हुए ब्रह्माण्ड के प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थ तक पहुँचती है। चूँकि हमारी पृथ्वी पर वायुमण्डलीय दबाव अन्तरिक्ष की अपेक्षा अधिक है अतः सूर्य से आने वाली अनेक रश्मियाँ छिन्न भिन्न हो जाती हैं तथा अनेक रश्मियाँ प्राणि शरीरों में अथवा जड़ द्रव्यों में अथवा वनस्पतियों में प्रवेश कर जाती हैं। इनके प्रभावस्वरूप पार्थिव जीवों द्रव्यों तथा वनस्पतियों में न केवल आकृतिजन्य अपितु अवस्थाजन्य भी सभी प्रकार के परिवर्तन सम्भव होते हैं। ज्योतिषशास्त्र मुख्य रूप से इन्हीं का अध्ययन करने की विधा है।

ज्योतिष शास्त्र सूर्य की भाँति अन्य आकाशीय पिण्डों से आने वाली रश्मियों के प्रभावों का भी अध्ययन करता है। मुख्यतया सूर्यातिरिक्त ग्रहों एवं नक्षत्रों से आने वाली रश्मियों के प्रभावों का, क्योंकि सभी पार्थिव सजीव-निर्जीव पदार्थों पर ये प्रभाव भी उतने ही सम्भव होते हैं जितने कि सूर्य रश्मियों के। यद्यपि सूर्य को ग्रह या ग्रहों का राजा भी कहा जाता है तथापि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है। ब्रह्माण्ड में व्याप्त परमाणुओं से निकलने वाली सभी प्रकार की रश्मियों को अपनी रश्मियों के बल से ग्रहण करने के कारण यह ग्रह माना गया है। अन्य ग्रह तो केवल सूर्य की रश्मियों को ही ग्रहण करके अपनी रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं। यही कारण है कि अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य अधिक शक्तिमान् है और सूर्य से गृहीत रश्मियों का उपयोग सृष्टि संचालन के निमित्त ही कर ऐसे शासनिक नियम से अन्य ग्रहों को शासित करने के कारण ही इसे ग्रहों का राजा कहा गया है।

राजानौ रविशीतगुः क्षितिसुतो
नेताकुमारो बुधः।
सूरिर्दानव पूजितश्च सचिवौ
प्रेष्यः सहस्रांशुजः।। (ज्यो.त. 9-2/52)

सूर्य एकमात्र स्थिर ग्रह है किन्तु उसका उदयबिन्दु प्रतिदिन परिवर्तित होता है जो पृथ्वी के परिक्रमण काल में होने वाले ध्रुवीय आकर्षण का परिणाम है और इसी से उत्तरायण में सूर्य का झुकाव उत्तर की ओर तथा दक्षिणायन में दक्षिण की ओर दिखायी देता है। उत्तरायण एवं दक्षिणायन दोनों में

उदय बिन्दु के झुकाव की एक निश्चित दूरी होती है जो पृथ्वी की स्थिति गति पर निर्भर करती है। वास्तव में देखा जाये यह दूरी पृथ्वी के परिभ्रमण के अन्तिम बिन्दु को बतलाती है। सूर्य के उदय बिन्दु से लेकर इस अन्तिम बिन्दु के मध्य का जो भाग है वही अन्तरिक्ष है। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब हम उत्तरायण एवं दक्षिणायन के आधार पर पृथ्वी के परिभ्रमण के अन्तिम बिन्दु का निर्धारण करते हैं तो पृथ्वी के परिभ्रमण का आरम्भ बिन्दु क्या है? इस विषय में यजुर्वेद का वचन है–

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः
पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः।
इयं वेदि परोऽन्तः पृथिव्या
अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।।

यहाँ 'नाभि' शब्द उत्तरायण एवं दक्षिणायन के अन्तिम बिन्दुओं की दूरी के मध्य भाग का निर्देश करता है तथा यह मध्य बिन्दु पूर्व में होता है क्योंकि 'यज्ञ' शब्द सूर्य में निरन्तर होने वाली नाभिकीय परमाणु विखण्डन की प्रक्रिया के लिए आया है तथा 'वेदि' शब्द पूर्वी क्षितिज के लिए प्रयुक्त हुआ है। जहाँ सूर्य उदित होता हुआ दिखायी देता है यही मध्य बिन्दु है तथा पृथ्वी के परिभ्रमण का आरम्भ बिन्दु है। इसे ही परिभ्रमण का भी आरम्भ बिन्दु मानना चाहिए। तथा इसी आरम्भ बिन्दु से स्थिति एवं गति का निर्धारण करते हुए सूर्य के प्रभावों का अध्ययन करना चाहिए।

वैदिक मत में सूर्य का जन्म नक्षत्र कृत्तिका है। सूर्य के प्रारम्भिक उदय बिन्दु ही दिशा कृतिका की स्थिति को बताती है तथा कृतिका को भी सूर्य की भाँति स्थिर माना गया है। इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का अधोलिखित वचन ध्यातव्य है–

''एता ह वै प्राच्यै दिशो न च्यवन्ते। सर्वाणि ह वा अन्यानि नक्षत्राणि प्राच्यै दिशश्च्यवन्ते।''

यहाँ कृतिकाओं के अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों को गतिशील माना है। कृतिकाओं का स्वरूप आकाश में ऊपर की ओर उठती हुई अग्निज्वालाओं के तुल्य माना है। अथर्ववेद भी यहीं से वैश्वानरपथ का प्रारम्भ बतलाता है–

वैश्वानरस्याप्रतिमोपरि द्यौ–
र्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः।
ततः षष्ठद्धामुतो यन्ति स्तोमां
उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः।।

यह वैश्वानरपथ ही राशिचक्र या नक्षत्र मण्डल है। राशिचक्र या नक्षत्रमण्डल में विद्यमान तारे भी सूर्य रश्मियों को ग्रहण कर अपनी रश्मियाँ उत्सर्जित करते हैं तथा इनका प्रभाव भी ग्रहों की गति के प्रभाव से प्रभावित होता है। जिस तरह ग्रहों की स्थिति एवं गति सूर्य रश्मियों से प्रभावित होती है

उसी प्रकार नक्षत्रों की भी स्थिति एवं गति सूर्य रश्मियों से प्रभावित होती है। यही कारण है कि ग्रहों एवं नक्षत्रों की उत्सर्जित रश्मियाँ सूर्य रश्मियों की भाँति सभी पार्थिव द्रव्यों सजीवों तथा निर्जीवों को प्रभावित करती है।

संदर्भः–

1. आचार्य कश्यप ने ज्योतिष शास्त्र की आचार्य परम्परा का प्रारम्भ सूर्य से ही माना है। उस सन्दर्भ में कश्यम संहिता का वचन है–

सूर्यः पितामहो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरङ्गिरा।।
लोमशः पोलिशश्चैव च्यवनो यवनो भृगुः।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तकाः।। (क.सं.–1/3,4)

2. (क) महर्षि पराशर ने ज्योतिषशास्त्र की आचार्य परम्परा का प्रारम्भ ब्रह्मा से माना है। जैसा कि पराशरसंहिता के निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट होता है–

विश्वसृङ्नारदो व्यासो वसिष्ठोऽत्रिः पराशरः।
लोमशो यवनः सूर्यश्च्यवनः कश्यपो भृगुः।
पुलस्त्यो मनुराचार्यः पौलिशः शौनकोऽङ्गिरा।
गर्गो मरीचिरित्येति ज्ञेयः ज्योतिः प्रवर्तकाः।। (परा.सं.–1/6,7)

(ख) सिद्धान्त तत्त्वविवेक में कमलाकर भट्ट ने ब्रह्मा एवं सूर्य दोनों को पृथक् पृथक् प्रवर्तक स्वीकार किया है।

पूर्व विभागाध्यक्ष, साहित्य विभाग,
राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय,
कालाडेरा, जयपुर

अथ संस्कृत भाषा प्रस्तावः

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

भाषा नाम मनुष्यवाग्व्यवसितं शब्दार्थयुग्मातिम्
अन्योऽन्यस्य विचारबोधनपरं यद्वृत्तबोद्धव्ययोः।
वर्णैः शब्दपदक्रमोपरचितैर्वाक्यात्मनोच्चारितैः
तत्तद्भाषणपद्धतेर्नियमतो यत्रास्ति वाग्विस्तरः।।1।।

तत्तद्देशविशेषमानवकुलैराजीवनं भाषिता
भाषा यद्यपि यत्र तत्र शतशो लोके प्रसिद्धिं गताः।
अस्माभिस्तु निसर्गसुन्दरतरं भाषोत्तमं संस्कृतं
साङ्गोपाङ्गविचारगोचरतया प्रस्तूयते साम्प्रतम्।।2।।

सृष्ट्यादौ परमेश्वरेण गुरुणा ब्रह्मर्षिसन्देशिते
वेदाङ्गैरभिवर्धिता सुमहिता या सभ्यता संस्कृतिः।
सैषा सन्निहिता सनातनतया सम्भाषिते संस्कृते
तत्सौन्दर्यदिदृक्षवो यदि वयं तत् संस्कृतं सेव्यताम्।।3।।

यां वाचं समुपासते दिविषदो विश्वे विधात्रादयो
यस्यामायतते हविः क्रतुभुजां धर्म्यं च कर्माखिलम्।
यामाराध्य नृपा नरा यतिवरा स्वाभीष्टसिद्ध्यै पुरा
तां कल्याणमयीमुतामृतमयीं दैवीं गिरं राध्नुमः।।4।।

अस्मत्पूर्वजविश्ववन्द्यविदुषां या ब्रह्मविद्या परा
विज्ञानं च मनुष्यजीवनकृते यद्यत् समाविष्कृतम्।
चित्ताह्लादकरः कलासमुदयो विश्वप्रशस्तो हि यः
सर्वं संस्कृतगर्भितं कथमिदं ज्ञेयं विना संस्कृतम्।।5।।

आर्ये र्विश्वप्रशंसितोत्तमगुणा स्वा: सभ्यता संस्कृति:
ज्ञातुं चानुविधातुमद्य सुशका सा संस्कृतेनैव भो:।
अन्ये चापि तदार्यसंस्कृतिगुणान् जिज्ञासमाना यदि
तत्तेषां हि कृतेऽपि संस्कृतपरिज्ञानं महावश्यकम्।।6।।

आर्याणां तु कृते हि संस्कृतमिदं स्यादात्मभाषोत्तमं
तत्तेषां परमं धनं च परमो गर्वाभिमानोत्सव:।
लोके संस्कृतभारती हि परमा शोभाऽर्यजात्यास्त्विह
तस्मादार्यपरम्परासुपुरुषैर्ज्ञेयं सदा संस्कृतम्।।7।।

प्राचार्यचरः,
श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

ज्योतिषशास्त्रस्य प्रभेदः

डॉ. सीमा शर्मा

वेदाङ्गेषु चक्षुस्वरूपस्य निर्मलज्योतिषशास्त्रस्यानेकभेदयुक्तस्य त्रयः प्रधानभेदाः- सिद्धान्त-संहिता-होराख्यप्रमुखैः सर्वैः पूर्वाचार्यैः वर्गीकृताः। केषान आचार्याणां मतानुसारेण प्रश्न-रमलेति स्कन्धद्वयं स्वीकृत्य प प्रभेदा तैः कृता। परं स्कन्धत्रये न विद्यते कस्यापि प्रतिपत्तिः।

नारदेनापि -

''सिद्धान्तसंहिताहोरारूपं स्कन्धत्रयात्मकं।

वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्यातिः शास्त्रमकल्मषम्।।''

प्रथमः सिद्धान्तः भागः

''स्कन्धं त्रयात्मकं शास्त्रमाद्यं सिद्धान्तसंज्ञितम्।

द्वितीयं जातकं स्कन्धं तृतीयं संहिताह्वयम्।।

इदानीं प्रतिपादितानां त्रयाणामपि स्कन्धानां संक्षिप्तपरिचयः समुपस्थाप्यते। तत्र सिद्धान्तस्कन्धस्यापरनाम्नः गणितस्कन्धस्य लक्षणं भास्करानुसारम् -

''त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलना मानप्रभेदश्च क्रमात्

चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः।

भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते

सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे वुधैः।।

अर्थात् सृष्ट्यादितः प्रलयान्तकालं यावत् ग्रहनक्षत्रादीनां गणनाकाल उत्तरसहितं प्रश्नाः। ग्रहाणां गतिविषयप्रतिपादितम् व्यक्ताव्यक्तात्मकं गणितम्। भूश्च धिष्ण्यानि च ग्रहाश्च तेषां या संस्थितिस्तथा कथनं निरूपणम्। यन्त्रादिकालज्ञानसाधनभूतं प्रसिद्धम्। अर्थात् सिद्धान्ते कालमाननिरूपणम्, अहर्गणानयनम्, वेधगणिताभ्यां ग्रहस्फुटीकरणम्, दिग्देशकालज्ञानोपायनिरूपणम्, तथा कतिपयतन्त्रकरणव्यक्ताव्यक्त-चापज्याक्षेत्रगणितविषयाश्च विराजन्ते।

द्वितीय: संहिता स्कन्ध:

नैकविधविश्वाभिप्रायिक-सिद्धान्तानां निरूपकत्वेन संहितास्कन्धस्यानेके प्रभेदा: भवन्ति। तेषु प्रमुखा: भेदा: यथा-

1. सौरमण्डलीयप्रभाव:
2. नाभसप्रभाव:
3. धूमकेतूनां प्रभाव:
4. भूगोलीयप्रभाव: भूकम्पादयश्च।

त्रिगोलीयप्रभावा: - भूसंस्थानानुरोधेन सर्वविधोत्पाता: शुभाशुभलक्षणानि घटनाचक्राणि कार्यभाव - कारणस्वरूपाणि। दिग्देशकालाभिप्रायकभेद: ग्रहार्क्षाणि चात्र परस्पर: सापेक्षिकत्वात् विविच्यन्ते।

वास्तुविद्या - वास्तुस्थापत्यं वास्तुशिल्पं च।

स्वरविद्या - पस्वराणां साहाय्येन शुभाशुभसमयस्य निरूपणम्।

स्वप्नविद्या - स्वप्नानुरोधेन शुभाशुभफलविचार:, दिनमासानुरोधेन तथा जन्मान्तरगतविविधसम्बन्ध:, मन्त्रा: शास्त्रीयप्रयोगाश्च।

शकुनविद्या - भूपृष्ठस्थ दृश्य तात्कालिकशुभाशुभलक्षणानुरोधेनास्य विचार: भवति।

गोचरविद्या - ग्रहगोचरीयशुभाशुभ-विश्वाभिप्रायिकप्रभावनिरूपकस्तात्कालिकविचार:।

अर्घविद्या - वस्तुसमर्घममहार्घयो: विचार:।

भूगर्भविद्या - भूमे: गर्भस्थानां वस्तु: पदार्थादीनां च विचार:। नवीनपरीक्षणेन अस्या: शाखाया: बहव: विभागा: सभता:।

दकार्गलविद्या - भूगर्भान्ते जलस्य स्थितिस्तस्य विचारविमर्श:।

शान्तिविद्या - शुभाशुभोत्पातशमनार्थं निदानात्मकं शास्त्रम्।

वृष्टिविद्या - मौसमविज्ञानं, ऋतुविज्ञानं, वातावरणविज्ञानं, मेघविचार:, जलीयचक्रं, वृष्टे:, कृषिगतसम्बन्धादिविविधसम्बन्धितविषया: विविच्यन्ते। अत्रापि त्रिगोलीयसम्बन्ध: एव मुख्य:।

सामुद्रिकविद्या - सर्वाङ्गशरीरलक्षणविधायकं शास्त्रम्।

अङ्गविद्या - अङ्गस्फुरणं तस्यानुसारं प्रकृतिविकृतय: तस्या: शुभाशुभफलानां वर्णनम्।

पल्लीपतनविचार:- पल्लया: अङ्गविशेषेषु पतने शुभाशुभनिरूपणजन्यशास्त्रम्।

एवमेव ज्योतिषशास्त्रस्य संहितास्कन्धस्य अनेके विभागा: भवन्ति। प्रख्यातज्योतिर्विदुष: वराहमिहिरस्य समये उपर्युक्त सर्वविधा: विद्याशाखा: प्रयोगान्तर्गता आसन्।

तृतीय: होरास्कन्ध:

होराशास्त्रेऽपि राशिहोराद्रेष्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भाग बलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिर्धारणं प्रकृति धातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहो निषेकजन्मकाल विस्मापनप्रत्ययादेशं सद्यो मरणायुर्दायं दशान्तदशाष्टकवर्गराजयोगचन्द्रयोग द्विग्रहादियोगानां नाभसादीनां च योगानां फलान्याश्रय भावालोक निर्याणगत्यनुकानि तत्कालप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहदीनां च कर्मणां करणम्। एवमेव व्यक्तेरभिप्रायिक सर्वविधविचार: होराग्रन्थे समुपलभ्यते भारतीयज्योतिषे सामुद्रिकशास्त्रस्य एवं सामुद्रिकशास्त्रे हस्तसञ्जीवनस्य स्थानम् 'समुद्रेण प्रोक्तमिदं सामुद्रिकम्' समुदऋषिणा प्रणीतं यत् तत् सामुद्रिकमित्युच्यते। स्त्रीपुंशरीरलक्षणशास्त्रमस्यार्थ:। सामुद्रिकशास्त्रे नखत: शिखापर्यन्तं सपादमस्तिष्कशरीस्याङ्गोपाङ्गानां विस्तृतं विवेचनमस्ति।

मुख्यतया हस्तं संस्पृश्य दृष्ट्वा विमृश्य च कृतफलादेशं सटीकं भवति। अनेनैव कारणेन प्राचीनाधुनिकाचार्यै: मनीषिभिश्च सामुद्रिकशास्त्रान्तर्गतहस्तशास्त्रं सर्वाङ्गचिन्तनं प्रस्तुतम्। हस्तरेखाविज्ञानं भारतीयानामनुपमविज्ञानमासीत्। 'हस्तसञ्जीवनम्' ग्रन्थमस्यैव एकमुदाहरणमस्ति। विषयेऽस्मिन् तिलकमहोदयेन कथितम्।

"I can sofly say that palmistiry can be relied upon as much if not more than astrology."

हस्तरेखाविज्ञानसम्बद्धा: अनेके ग्रन्था: सन्ति किन्तु हस्तेन सम्पूर्णफलादेशस्य क्रियाप्रतिक्रियास्ति ग्रन्थेऽस्मिन्। श्रीमेघविजयगणिकृत 'हस्तसञ्जीवनम्' भारतीयाङ्गविद्यासु प्रतिनिधि: सामुद्रिकविद्यायानुपमग्रन्थोऽस्ति। इदं प्राचीनमौलिकग्रन्थेष्वग्रणी ग्रन्थम्। विभिन्नसिद्धान्तं पद्धतीश्च प्रमाणयति। हस्तं दृष्ट्वा जन्मपत्रनिर्माणं, हस्तेनैव वर्षकुण्डली-मासकुण्डली-तिथिकुण्डली च निर्माणं तथा दिनदशायारपि सूक्ष्मातिसूक्ष्मज्ञानं भवति। हस्तं संस्पृश्य दृष्ट्वापि मूकप्रश्ननिर्णयानां सूक्ष्मविवेचनं कर्त्तुं शक्यते। अयमेव अस्याकर्षणमस्ति। ग्रन्थेऽस्मिन् पविंशत्युत्तरपशतश्लोका: सन्ति। तस्यैव हस्तरेखाविज्ञानस्यावयवभूतोऽयं ग्रन्थ: संक्षिप्तोऽपि सर्वाङ्गपूर्ण:, स्त्रीपुंसयोरनुशीलने महत्वशाली वर्तते।

जगदिदं परिवर्तनशीलं वर्तते वर्तमाने शिक्षा-विवाह-व्यवसाय-रोगादिविभिन्नस्थानेषु परिवर्तनानि

जायन्ते। अनेनैव कारणेन प्राचीनग्रन्थेषु यत् वर्णितं फलादेशं तत्तु आधुनिके नोचितम्। तत् प्राचीनभारतीयपद्धतिविचारस्थितीनां अनुसारेणैवोपयोगी भवति।

प्राचीनकालस्य ग्रन्थेऽस्मिन् सर्वे विषयाः समाहिताः सन्ति। तथापि अद्य केचन ईदृशाः विषयाः येषां प्रयोगः प्राचीनकाले न क्रियते स्म। यथा –

यदि हस्ते राजयोगस्य चिह्नानि स्युः तर्हि पुरा अस्यार्थः राजेति भवति स्म, परन्तु अधुना राजयोगस्य किं फलं वक्तव्यम्? राजा वा धनवान् वा सर्वकारस्य प्रशासनस्य जनो वा, इति विचारणीयमस्ति।

हस्ते विद्यारेखा त्वस्ति, परन्तु सः जातकः कस्मिन् क्षेत्रे विद्यां प्राप्स्यति – अभियान्त्रिके चिकित्सायां शिक्षायां वा अयमाधुनिककालस्य मुख्यप्रश्नः?

पुरा मनुष्यास्यायुः शतवर्षाणि भवन्ति स्म। अद्य शतवर्षाणि प्रायः कस्यचिदपि नरस्य न भवति। तदा आयुप्रमाणं केन प्रकारेण निर्णीतं स्यात्।

तर्जनीमूले रेखा संन्यासरेखेति, पुरा तु ऋषिमहर्षयः संन्यासं गृह्णन्ति स्म, वनं गत्वा तपन्ति स्म। अद्य अस्य संन्यासस्य कोऽर्थः?

ज्यौतिषशास्त्रे सर्वप्रकारेण मृत्युविषये विवरणमस्ति। यथा जलेन शस्त्रेण अग्निना ज्वरेण, परन्तु अधुना प्रचलितात्माघातविषये योगबोधकानि शास्त्राणि न्यूनानि सन्ति।

हस्ते वाहनरेखा स्यात्, तर्हि अश्व- पालकीरथपूर्णः जनः इति कथ्यन्ते, अद्य कीदृश्या वाहनरेखया जातकः केन यानेन कारयानेन विमानेन युतो वा भविष्यति।

प्राचीने तु ग्रन्थोऽयं सटीकः आसीत्। किन्तु आधुनिके अस्मिन् ग्रन्थे वर्णितं फलादेशं केन प्रकारेण उपयुक्तं स्यात्। अत एव 'हस्तसञ्जीवनस्य' आधुनिकपरिप्रेक्ष्ये उपयोगितास्ति न वा।

हस्तरेखाद्वारा फलादेशस्य वैज्ञानिक पक्षः

प्राचीनसर्वहस्तरेखाग्रन्थेषु कृतफलादेशं तत् समयानुसारमुचितं भवति स्म। अद्य वैज्ञानिके युगे बहुनि वस्तूनि परिवर्तनानि, विभिन्नरोगाः – प्रकृतिकृतकार्याः – शिक्षा-सामान्यजीवनेत्यादयः-

अत एव वैज्ञानिकपक्षस्य ज्ञानं परममावश्यकं वर्तते। आधुनिकहस्तरेखाविदः नोवेल जेक्यून-बेन्हम-लॉरी रीड-एन आल्टमेनाः चादयः सिद्ध्यन्ति यत् हस्तरेखाभिः जातकस्य चरित्रस्वभावमानसिकस्थिति-स्वास्थ्यविषयेभ्यः पृथक् कैसंरहृदयाघातपक्षाघातमोतियाबिन्दश्चेत्यादीन् विभिन्नगम्भीररोगान् ज्ञायन्ते।

भारतीयज्यौतिषेनः सिद्धम् ग्रहाणां स्पष्टप्रभावं मानवजीवने भवति। यथा – चन्द्रमसः वृद्धिक्षीणत्वात् समुद्रे ज्वारभाटा-उत्पत्तिः अर्थात् अस्य जलेन सम्बन्धः। विभिन्नवैज्ञानिकाध्ययनैः सिद्धम्-पूर्णचन्द्रात्रिषु

घातमात्मघातं वाधिकं जायते। यतोहि चन्द्रमसि परिवर्तने सति मानवशरीरस्य जले रक्ते वा परिवर्तनेन धनात्मकं ऋणात्मक प्रभावो भवति।

वर्तमानप्रचलितारोगानां कृते एक्यूप्रेशरप्राकृतिकचिकित्सापद्धतिः सुजोकचिकित्सापद्धतिः प्रचलिताः। एतासु हस्तपादेषु विभिन्नबिन्दुषु प्रभावं संपात्य रोगानामुपचारः क्रियते। बिन्दूनां दबावेन रक्तसारः उचितः भवति येन शरीरे स्फूर्तिशक्त्यादिषु वृद्धिमागच्छति।

जापानदेशे (shiatsu) कथ्यते। (shi) अगुलयः, (atsu) दबावः। हस्ताङ्गुलिषु दबावैरेवेयं पद्धतिः। अमेरिका-कनाडा-जर्मनी-चीनादिदेशेषु बहुप्रचलिता। सर्वशरीरस्य शारीरिकमानसिकविभिन्नरोगानामुपाचारः हस्तपादमाध्यमेन कथं किमर्थं करोति अस्य वैज्ञानिकाधारः वर्तते। तत्र रक्तवाहिकानां स्नायुसंस्थानाना समस्तसूक्ष्मदीर्घनाडीनामन्तिमभागाः हस्तपादेष्वेव भवन्ति।

संस्कृत शिक्षिका, दिल्ली सरकार

प्रो. सुरजनदासजी स्वामी

पं. नवीन जोशी

श्री दादू आचार्य संस्कृत महाविद्यालय के गौरव प्रथम स्नातक श्री सुरजनदासजी स्वामी साहित्याचार्य, वैयाकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, सांख्याचार्य इत्यादि उपाधि से विभूषित स्वामीजी का जीवन वृतान्त संवत् 1976 में जमात उदयपुर निवासी पंच श्री गीधारामजी से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्हीं की सेवा में अक्षराभ्यास भी वहीं प्रारंभ किया प्राणाचार्य आयुर्वेदमार्तण्ड स्वामी श्री लक्ष्मीरामजी महाराज के सतत् प्रयत्नों से संस्थापित श्री दादू महाविद्यालय की स्थापना होने पर संवत् 1977 से आप इस विद्यालय में पढ़ने के लिए जयपुर आ गये, उसी दिन से जीवनपर्यन्त आप सारस्वत साधना में लीन रहें, श्री दादू महाविद्यालय के प्रथम स्नातक के रूप में आने साहित्य शास्त्री संवत् 1985 तथा व्याकरणशास्त्री संवत् 1987 में उत्तीर्ण की इसके पश्चात् साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, सांख्यायोगाचार्य आदि परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की, इस प्रकार पारंपरिक संस्कृत भाषा का अध्ययन समाप्त कर आने हाई स्कूल, इन्टर, बी.ए. तथा एम.ए. की परीक्षाएँ भी उत्तीर्ण की। साहित्याचार्य परीक्षायें सर्वप्रथम रहने के कारण महाराणा भूपालसिंह स्वर्णपदक द्वारा सम्मान्वित किया गया। एम.ए. में सर्वप्रथम रहने के कारण स्वर्ण पदक महाराजा कॉलेज से नार्थ बुक रजत पदक तथा विद्यालय के दशम वार्षिकोत्सव में महाविद्यालय विद्यार्थीयो में सर्वप्रथम रहने पर 'श्री लक्ष्मीराम स्वर्णपदक' से सम्मानित हुए।

कार्य प्रारंभ :

मध्यमा (उपाध्याय) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही आप अध्यापक हो गये सन् 1931 के जून मास के सहायक अध्यापक के रुप में आपने कार्य प्रारंभ किया। सन् 1937 में तत्कालीन शिक्षा निदेशक श्री विलियम ओवन्स के आग्रह पर एक वर्ष तक खेतड़ी संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया। सन् 1942 मई से सन् 1946 जुलाई तक दादू महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के रुप में कार्य किया। अगस्त 1946 से अक्टूबर 1948 तक इण्डियन मेडिसन बोर्ड के रजिस्टार पद पर रहे, सन् 1948 नवम्बर से सन् 1950 जनवरी तक महाराज कॉलेज जयपुर में संस्कृत विभाग के प्रोफेसर पद पर इसी क्रम में जुलाई 1952 तक सहायक प्रोफेसर के पद पर कार्य किया। 1952 के पश्चात् राज. महाविद्यालय किशनगढ़ में संस्कृत विभागाध्याक्ष, फिर राजर्षि कॉलेज अलवर में संस्कृत

विभागाध्यक्ष के पद पर कार्य किया। सन् 1961 के नवम्बर में आपका स्थानान्तरण डूंगर कॉलेज, बीकानेर में संस्कृत विभागाध्यक्ष के पद पर हुआ। जहाँ से एक वर्ष पश्चात् ही स्थानान्तरित होकर राजकीय महाविद्यालय अजमेर में संस्कृत विभागाध्यक्ष बनाये गये। सन् 1966 ई. से आप जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर के संस्कृत विभाग में रीडर के पद पर कार्य किया। आप अपने समय के सर्वश्रेष्ठ अध्यापक हुए हैं। स्वामीजी के अनेक शिष्य राजस्थान व अन्य प्रांतो में संस्कृत व्याख्याताओं के रुप में सेवा संलग्न हैं।

श्रद्धेय स्वामी जी ने 4 वर्ष तक महामहोपदेशक विद्यावाचस्पति पं. श्री मधुसूदनजी महाराज की सेवा में रहकर वेद विद्या व वैदिक कर्मकाण्ड का भी अध्ययन किया हैं। उनके दिवंगत होने पर उनके सुपुत्र पं. प्रद्युम्न झा के आदेश से उनके ग्रन्थों का सम्पादन किया था। अनके ग्रंथो की हिन्दी व्याख्यायें भी प्रस्तुत की गई है। आप वैदिक विज्ञान विषय के निरन्तर प्रचार-प्रसार में संलग्न रहे हैं। वाणी तथा दर्शन नामक पुस्तक तथा दादूवाणी की सामान्य भूमिका भी लिखी जो लगभग शत् पृष्णनुमानित हैं। एक वर्ष 6 माह तक आपने 'भारती' संस्कृत पत्रिका का सम्पादन किया। आपको भारती पत्रिका के प्रथम सम्पादन के रुप में याद किया जाता हैं। आपने 4 वर्ष से अधिक समय तक राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री पद पर कार्य किया। आप अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन व राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन के सर्वाधिक सक्रिय सदस्य व उपाध्यक्ष रहे हैं। राजस्थान शिक्षा सलाहकार मण्डल के सम्मनित सदस्य भी रह चुके हैं।

आपका रचनात्मक कार्य इस रुप में प्रस्तुत किया जा रहा हैं–

क्र.सं.	**नाम रचना**	**प्रकाशन विवरण**
1.	सत्यकृष्णं रहस्य (सम्पादन मात्र)	वि.सं. 1949
2.	निरुढपशुबन्ध (सम्पादन मात्र)	वि.सं. 1949
3.	वैदिकापाख्यान (सम्पादन मात्र)	वि.सं. 1950
4.	पदनिरुक्त (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	वि.सं. 1950
5.	देवासुरख्याति (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	वि.सं. 1951
6.	आधिदैविकाध्याय (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	वि.सं. 2007
7.	आशौच पंजिका (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	वि.सं. 2008
8.	पुराणोत्पत्ति संग्रह (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	वि.सं. 2008

9.	मन्वन्तर निर्धारः (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	वि.सं. 2021
10.	यज्ञोपवीत विज्ञान (हिन्दी व्याख्या सहित सम्पादन)	वि.सं. 2021
11.	सन्ध्योपासना रहस्य (स्वतंत्र ग्रन्थ)	वि.सं. 2021
12.	पथ्या स्वस्ति (हिन्दी सारांश सहित सम्पादन)	वि.सं. 2016

आपने अपने गुरु विद्यावाचस्पति श्री मधुसूदनजी ओझा के उपर्युक्त साहित्य का सम्पादन व प्रकाशन किया है। श्री ओझाजी के उल्लेखनीय शिष्यों में श्री सुरजनदासजी ही ऐसे शिष्य हैं, जो उनके साहित्य का प्रकाशन मनोयोग पूर्वक कर रहे हैं। वास्तव में आपका यह कार्य जयपुर के संस्कृत-साहित्य के इतिहास में उल्लेखनीय है। आप उनके वैदिक विज्ञान पर साधिकार व्याख्यान दिया करते हैं और वह सभाजनों को अत्यन्त मुग्ध कर देता है। इस प्रकार आप एक कुशल अध्यापक के रूप में भी उल्लेखनीय हैं, जिनके अनेक छात्र राजस्थान विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणि में तथा सर्वप्रथम रूप में उत्तीर्ण होने के कारण स्वर्ण पदक से सम्मानित किये गए हैं।

आपके अनेक शोधपूर्ण निबन्ध भी विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इनका विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया।

क्र.सं.	**नाम लेख**	**प्रकाशन विवरण**
1.	वेदेषु विज्ञानम्	संस्कृत साहित्य सम्ममेलन सन् 1967-संस्कृत में
2.	चारके दर्शनम्	संस्कृत रत्नाकर आयुर्वेदांक में प्रकाशित - 1940
3.	स्वभावोक्तेरलंकाररित्वप्रतिपादनम्	संस्कृत साहित्य सम्मेलन स्मारिका
4.	अभिनवगुप्तरीत्यास्वरूपनिरूपणम् (रहस्य)	राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन उदयपुर, 1968
5.	शान्तोऽपि नवमो रसः	राजकीय महाविद्यालय कोटा पत्रिका, 1959
6.	वेदेषु मनस्तत्वम्	संस्कृत रत्नाकर वेदांक में प्रकाशित
7.	दर्शनदर्शनम्	रा.सं.सा. सम्मेलन 1965 दर्शन परिषद अध्यक्षीय भाषण
8.	गंगायाः वैज्ञानिकस्वरूपनिरूपणम्	संस्कृत रत्नाकर 2415 में प्रकाशित
9.	वेदेषु इतिहास	संस्कृत रत्नाकर 2715 में प्रकाशित
10.	देवो देवता च	संस्कृत रत्नाकर 2715 में प्रकाशित
11.	रसस्वरूपनिरूपणम्	राजकीय महाविद्यालय कोटा पत्रिका

12.	काव्यलिंग तथा अर्थान्तरन्यास भेद	विश्वम्भरा शोध पत्रिका 1963-64
13.	वैश्वानरस्वरूप प्रतिपादनम्	विश्वम्भरा शोध पत्रिका 1968
14.	ऋषि छन्द व देवता स्वरूप विवेचन	स्वाहा पत्रिका रा.प्रा.वि. प्रतिष्ठान, जोधपुर
15.	वेदाः विज्ञानं च	रा.सं.सा. सम्मेलन 13वां अधिवेशन वेदपरिषद् अध्यक्षीय भाषण
16.	साधारणीकरणम्	प्रकाश्यमान इत्यादि

शोध छात्र,
पद्मश्री नारायणदास रामानन्ददर्शन अध्ययन एवं शोध संस्थान,
जयपुर

ॐ श्री अलखपुरीजी
सिद्धपीठ परम्परा

ॐ आश्रम

में आपका हार्दिक स्वागत है

जाडन ३०६४०१, जिला पाली, (राज.), भारत
दूर: +९१ २९३५ २७४०३५ +९१ ९०० १२९५ १३१
www.omashram.com info@omashram.com

द्वादश ज्योतिर्लिंग

ॐ आश्रम के मध्य में द्वादश ज्योतिर्लिंग शिव मन्दिर स्थापित है। मन्दिर के गर्भ गृह में शिव परिवार के साथ ही साथ, एक हजार आठ शिव मूर्तियों की स्थापना हेतु भक्तगण दान देकर अपना या अपने माता पिता का नाम लिखवाकर अभिषेक कराकर पुण्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार भक्तों द्वारा प्रतिष्ठित, सभी मूर्तियां सदैव इस द्वादश ज्योतिर्लिंग सहित नित्य पूजित होंगी। इनके दर्शन व अभिषेक के द्वारा भक्तगणों एवं दर्शनार्थियों को शारीरिक व मानसिक सुख समृद्धि की प्राप्ति होती है तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य प्राप्त होगा।

दिव्य समाधि

ॐ आश्रम के मध्यतल भाग में प्रातः स्मरणीय हिन्दू धर्म सम्राट ब्रह्मलीन श्री स्वामी माधवानन्दपुरी जी महाराज गुरुदेव की मूर्ति, सप्त ऋषियों सहित विराजमान है। जिसके दर्शन मात्र से दिव्य अनुभूतियां एवं मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। इस सिद्ध समाधि के विभिन्न कक्षों में २४ अवतार, विभिन्न दिव्य शक्तियों एवं ईश्वरीय विभूतियों के चित्र, भक्तों के सहयोग से प्रतिष्ठित किया जाना प्रस्तावित है, अतः इस कल्याणप्रद अवसर का लाभ उठायें।

सूर्य मंदिर

ॐ की पूर्ण आकृति में 'उ' की अर्धचन्द्र बिन्दु की मात्रा चन्द्र का प्रतीक है। चन्द्रमा मन का देवता व जल का प्रतीक है और स्वयम्भू शिव की जटा मुकुट का आभूषण है। यह अर्धचन्द्र आकार पानी की झील है, बिन्दु सूर्य का प्रतीक है। अर्धचन्द्र बिन्दु पर ४२ मीटर ऊंचा स्तम्भ है जिसमें १२ मन्दिर व ढाई लाख लीटर पानी की टंकी तथा ऊपर सूर्य मन्दिर स्थापित है। इस सूर्य मन्दिर के अष्ट खण्ड हैं जो अष्ट चक्रों का प्रतीक हैं।

दिव्य आकार

भव्य ॐकार का क्षेत्रफल, पूर्व से पश्चिम १८५ मीटर तथा उत्तर से दक्षिण २५२ मीटर है। ॐ आश्रम मन्दिर की ऊंचाई ३८.५ मीटर है। यह ॐकार रचनात्मक भव्य भवन दर्शनीय तीर्थ का साकार रूप गुलाबी पत्थर से निर्मित, भारतीय प्राचीन शास्त्रोक्त हस्तकला से परिपूर्ण है। वर्तमान युग में निर्मित शास्त्रीय कृति है। २५ वर्षों से निरन्तर निर्माण कार्य में नियोजित गरीब ग्रामीण मजदूर, शिल्पी अपने परिवार का भरण पोषण करते आ रहे हैं। जो भी भक्तों के सहयोग द्वारा श्री गुरुदेव की झोली में आता है, उसे इस विशाल निर्माण कार्य में लगा दिया जाता है।

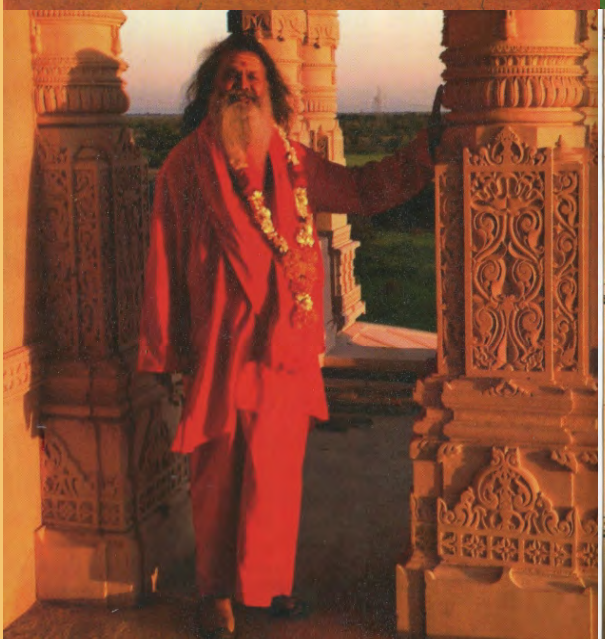

ॐ आश्रम शिव मंदिर स्थापत्य, वास्तुकला का उत्कृष्ट, अद्भुत एवं विशाल ॐ आकृति में विश्व की सबसे बड़ी इमारत है। जिसका रचनात्मक स्वरूप पूज्यश्री गुरुदेव अनंत विभूषित विश्वगुरु महामण्डलेश्वर परमहंस स्वामी श्री महेश्वरानंद पुरी जी महाराज की दिव्य अनुभूतियों एवं दैनिक जीवन में योग साधना व सूक्ष्मदृष्टि का अनूठा परिणाम है। जिस प्रकार माला के १०८ मणके होते हैं ठीक उसी प्रकार इस इमारत में १०८ कक्ष हैं। इस ॐ कारात्मक की दिव्य शक्ति और प्रकाश साधकों को कई किलोमीटर तक आभास व अनुभव होता है। यह ॐ तीर्थ न केवल भारत अपितु पूरे ब्रह्माण्ड की दिव्य शक्ति का केन्द्र है।

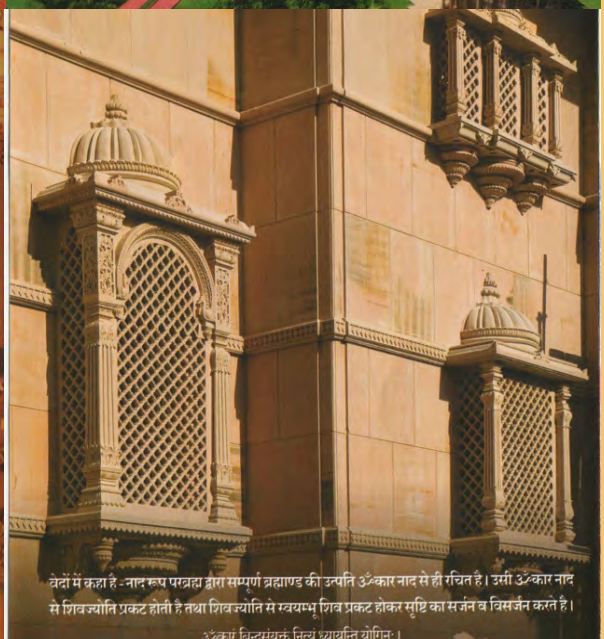

वेदों में कहा है - नाद रूप परब्रह्म द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पति ॐकार नाद से ही रचित है। उसी ॐकार नाद से शिवज्योति प्रकट होती है तथा शिवज्योति से स्वयम्भू शिव प्रकट होकर सृष्टि का सर्जन व विसर्जन करते है।

ॐकार बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥

ॐ आश्रम निर्माण कार्य पूर्ण करने हेतु आपके सहयोग अपेक्षित है।

श्री देवपुरीजी आश्रम ट्रस्ट
सहयोग राशि निम्न खाते में जमा करवाने का कष्ट करें
भारतीय स्टेट बैंक, नई दिल्ली A/c no: 0106 2864 5273
IFSC Code: SBIN0001538

महर्षि भगवान वाल्मीकि जन्म महोत्सव के पावन पर्व पर दिनांक 13 अक्टूबर, 2019 को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी

प्रकाशक : **विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान,** कीर्ति नगर, श्याम नगर, सोढाला, जयपुर
Mail Id. : vishwagurudeepashram@gmail.com • jaipur@yogaindailylife.org
Website : https://www.vgda.in • Youtube : www.youtube.com/c/vishwagurdeepashram

Narayan